भूमंडलीकरण के दौर में आख्यान की कला

राजकुमार

वैसे तो शब्द और अर्थ, रूप और अंतर्वस्तु की अभिन्नता की अवधारणा भारतीय परम्परा में पहले से मान्य चली आ रही थी किन्तु आधुनिक युग में एक ऐसा दौर आया जब यह मान लिया गया कि असल चीज अंतर्वस्तु है। और इस अंतर्वस्तु को रूप से अलग किया जा सकता है। भला हो हेडेन ह्वाइट का जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कन्टेन्ट ऑफ फार्म' में यह बताया कि साहित्य के प्रभाव और महत्व को सिर्फ 'कन्टेन्ट' के आधार पर विश्लेषित नहीं किया जा सकता। साहित्य के कन्टेन्ट में वे सारी चीजें शामिल हैं जिन्हें प्रायः रूप के खाते में डाल दिया जाता है।

असल में यथार्थवादी आख्यान का रचनाविधान ऐसा था कि पाठक को भ्रम होता था कि वह सिर्फ यथार्थ देख रहा है। जबकि सच्चाई यह थी कि वह आख्यान प्रविधि का इस ढंग से प्रयोग करता था कि पाठक को एहसास नहीं होता था कि जिसे वह सिर्फ यथार्थ की यथावत पुनर्प्रस्तुति मान बैठा है, वह सचेत रचनाकर्म का परिणाम है। ड्राइडेन की बात यथार्थवादी आख्यान पद्धति पर बिल्कुल सटीक बैठती है कि अपनी कला को छिपा कर पेश करना सबसे बड़ी कला है। अपने कला कौशल को छिपा कर यथार्थ का भ्रम पैदा करने की कोशिश को परवर्ती उपन्यासों और नाटकों में चुनौती दी जाती रही है। बर्तोल्त ब्रेष्ट तो सचेत रूप से प्रयास करते थे कि दर्शक को उनके नाटक देखने के दौरान यह एहसास न हो कि वे किसी यथार्थ घटनाक्रम को देख रहे हैं। परवर्ती उत्तर आधुनिक उपन्यासों ने अपने कला कौशल को छिपाने के बजाय खोल कर रख देने तथा यह बताने की प्रविधि विकसित की कि जिसे पाठक 'यथार्थ' मान बैठा है वह वस्तुतः एक विशेष प्रकार के आख्यानात्मक कला कौशल का परिणाम है; और 'यथार्थ' को कई वैकल्पिक रूपों में 'रचा' जा सकता है। यह बात और है कि इस तरह के कुछ उपन्यास उत्तर आधुनिक दौर से पहले लिखे जा चुके थे। लेकिन फिलहाल इस तफसील में जाने की जरूरत नहीं।

यथार्थवादी दौर में एक औसत समझ यह बन गयी थी कि यथार्थ बाहर पड़ा हुआ है और
जरूरत उसे आख्यान के चौखटे में डाल भर देने की है। किन्तु जब यह प्रतीत होने लगे कि जीवन जगत का बोध कराने में यथार्थवादी ज्ञानमीमांसा अक्षम साबित हो रही है तब यथार्थ, आख्यान, भाषा और जीवनदृष्टि के अंतर्सम्बंधों पर नये सिरे से सोच विचार शुरू हो जाता है। और फिर आख्यान की कला में भी बदलाव दिखायी पड़ने लगता है। बाजार केन्द्रित भूमंडलीकरण के इस दौर में यथार्थ की इतनी 'आभासी' दुनियाएं बन गयी हैं कि तय कर पाना मुश्किल हो रहा है कि वास्तव में यथार्थ क्या है। बात इस कदर आगे बढ़ गयी है कि आभासी आख्यानात्मक निर्मितियों के बाहर किसी 'वस्तुगत यथार्थ' को चिह्नित कर पाना भी मुश्किल हो गया है। राजू शर्मा का उपन्यास 'विसर्जन' वस्तुतः उस दौर की कथा कहता है जिसे पुराने ढब पर बयान कर पाना अब नामुमकिन सा लगता है।

वस्तुतः यह ऐसा उपन्यास है जिसकी आख्यान कला यथार्थवाद से आगे जाती है। उत्तर आधुनिकतावादी आख्यान प्रविधियों का और जीवन दृष्टि का रचनात्मक उपयोग यह उपन्यास समकालीन

tadbhav.com home page

सत्ता के तिलिस्मी चरित्र को बेनकाब करने के लिए करता है। जैसे डिटेक्टिव फिक्शन की प्रविधि का इस्तेमाल करने के बावजूद यह जासूसी उपन्यास नहीं है, वैसे ही उत्तर आधुनिक तरकीबों का प्रयोग करने के बाद भी यह उत्तर आधुनिक उपन्यास नहीं है। यही चीज इसे एक विलक्षण चरित्र प्रदान करती है।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र या नायक एसार है। एसार यू.पी. कैडर का आई.पी.एस. अधिकारी है और प्रतिनियुक्ति पर आई.बी. में काम कर रहा है। उसकी पत्नी कल्पना लखनऊ में पढ़ाती है और उसके एसार से सम्बंध लगभग टूट गये हैं। उसकी बेटी दिल्ली में पढ़ती है। एसार दिल्ली पर एक किताब लिखना चाहता है। इस योजना में उसकी बेटी टपुर उसकी मदद कर रही है। शुरू में लगता है कि दिल्ली के बारे में किताब लिखना सिर्फ एक युक्ति है और बरबस फ्रांसीसी उपन्यासकार आंद्रेजीद के उपन्यास 'काउंटर फिटर' की याद आती है। लेकिन जब उपन्यास आगे बढ़ता है तो बात साफ होने लगती है कि वस्तुतः यह उपन्यास भूमंडलीकृत यथार्थ के उस आयाम को उद्घाटित करने वाला है जिसका एक केन्द्र दिल्ली है। इस केन्द्र अर्थात् समकालीन राज्य के चरित्र और ब्लैकमेलिंग करने वाले सफेदपोश 'अगवा ग्रुप' या ग्रुपों के चरित्र में कोई बुनियादी अंतर नहीं रह गया है। एक ज्ञानी वृद्ध के शब्दों में *'असल में अगवा ग्रुप सरकार है और सरकार अगवा ग्रुप और इन दोनों के बीच जो कथित भेद हैं वह एक काल्पनिक दर्पण के कारण हैं जिसे हम सज्जन आदमी की नजर कहते हैं।'*

धारावाहिक घोटाले की तफ्तीश के बहाने यह उपन्यास सत्ता केन्द्र के रहस्य नायकों को चिह्नित करने का उपक्रम करता है। इस प्रक्रिया को उद्घाटित करने के लिए जासूसी उपन्यासों की प्रविधि का प्रयोग किया गया है। हालात ऐसे हैं कि यह तय कर पाना मुश्किल है कौन किसकी जासूसी कर रहा, कौन किससे मिला हुआ है, कौन किसे क्रास कर रहा है। धारावाहिक घोटाले को लेकर इतने नैरेटिव और काउंटर नैरेटिव हैं कि निश्चित कर पाना ही मुश्किल हो जाता है कि आखिर सच्चाई क्या है। अंततः आदर्श दरबारी के लम्बे इंटरोगेशन के बाद एसार को यह समझ में आने लगता है कि इस समूचे प्रकरण का असली सूत्रधार पी.वी.बी.आर. रंगराजन हैं। रंगराजन की शिक्षा अमेरिका में हुई है और वह एक महान अर्थशास्त्री, विचारक, उद्योगपति के रूप में मशहूर है। उसकी हनक सत्ता के गलियारों तक है। उसे पूर्व और वर्तमान प्रधानमंत्री भी मानते हैं। वह नवउदारवाद और निजीकरण का घनघोर समर्थक और प्रभावशाली वक्ता है। अंततः पता चलता है कि धारावाहिक घोटाला जैसी कोई चीज ही नहीं थी, सिर्फ रूटीन भ्रष्टाचार का मामला था। जिन आई.बी. रिपोर्टों को आधार बना कर धारावाहिक घोटाले का मीडिया में प्रचार किया गया था, वैसी कोई रिपोर्ट आई.बी. ने तैयार ही नहीं की थी। उल्लेखनीय है कि धारावाहिक घोटाले के कारण ही पिछली सरकार गिरी थी। सच्चाई सिर्फ यह थी कि स्पेशल ब्यूरो के प्रमुख शिवाल्कर ने अपने एक कर्मचारी आदर्श दरबारी को आदर्श मिराज नामक व्यक्ति के बारे में एक रिपोर्ट तैयार करने को कहा था। शिवाल्कर को यह भ्रम हो गया था कि उसकी एकलौती बेटी का वह प्रेमी है। आदर्श दरबारी ने आदर्श मिराज के बारे में रिपोर्ट बड़ी मेहनत से तैयार की और अपने बॉस को सुपुर्द भी कर दी। लेकिन बॉस की इस रिपोर्ट के बारे में दिलचस्पी खत्म हो चुकी थी क्योंकि उसे मालूम हो गया था कि जिस मिराज को यह अपनी बेटी का प्रेमी समझ कर आशंकित था, वस्तुतः वह उसका सिर्फ पुराना सहपाठी था। लेकिन गलती से यह रिपोर्ट आई.बी. चली गयी और बाद में इसी रिपोर्ट को आई.बी. द्वारा तैयार की गयी धारावाहिक घोटाले की रिपोर्ट के रूप में प्रचारित किया गया। शिवाल्कर को इस भूल की कीमत वी.आर.एस. लेकर चुकानी पड़ी। लेकिन जाते जाते उन्होंने आदर्श दरबारी, जो अब उनकी इकालौती बेटी का पति है, को स्पेशल व्यूरो का डायरेक्टर बनवा दिया।

एसार ने जो रिपोर्ट आई.बी. के बॉस डिब को सौपी थी, उसी के आधार पर उसने रंगराजन

से डील कर लिया। रिपोर्ट की व्याख्या बदल कर उसने रंगराजन को खलनायक से नायक में तब्दील कर दिया। इस डील में पूर्व वर्तमान प्रधानमंत्री के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। एसार पराजित हुआ और रंगराजन सम्मानित।

सत्ता के केन्द्र में इतनी आभासी छवियां मौजूद हैं कि अब उन्हें किसी 'यथार्थ' से जोड़ पाना ही नामुमकिन हो गया है। कई बार तो ये आभासी छवियां 'यथार्थ' से भी ज्यादा प्रभावशाली हो जाती हैं। ऊपर से नीचे तक सिर्फ छवियां ही छवियां होती हैं, यथार्थ होता ही नहीं। जैसे धारावाहिक घोटाला हुआ ही नहीं था, किन्तु उसकी छवियां इतनी प्रभावी सिद्ध हुईं कि सरकार गिर गयी। एक आरामदेह उत्तर आधुनिक तरीका यह है कि इन छवियों से खेला जाये। क्योंकि 'अर्थ या सवालों के प्याज छीनने वालों को आखिर में सिफर हाथ लगता है और आंखों में आंसू।' एसार की भी यही गति हुई किन्तु उसने सत्ता की तिलिस्मी छवियों से खेलने के बजाये उन्हें तोड़ने की ठानी। इस तिलिस्म को तोड़ने के लिए डिटेक्टिव नावेल की टेकनीक बहुत ही माकूल बैठती है। वस्तुतः इसे, हेडेन ह्वाइट के वजन पर, टेकनीक कहना गलत होगा। यह चीज उपन्यास की अंतर्वस्तु का अभिन्न हिस्सा है।

आभासी छवियों के इस संसार में व्यक्ति भी पहले जैसा सुगठित सुसमन्वित नहीं रहा। उसकी भी स्थिति सापेक्ष इतनी अलग अलग छवियां बन गयीं कि उन्हें एकसूत्र में पिरोना ही मुश्किल हो गया है। दिल के इतने खाने हैं कि दिल की शक्ल मधुमक्खी के छत्ते से मिलती है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति अब राजनीतिक आर्थिक सत्तातंत्र के इतना दबाव में आ गया है कि उसका अंतःकरण या तो संक्षिप्त हो गया है या खोखला। व्यक्ति के दो नहीं, कई टुकड़े हो गये हैं और उसकी इन अलग अलग शख्सियतों के इतने भिन्न आख्यान बनते हैं कि उनमें संगति बनाना असम्भव हो गया है।

(2)

नयी कहानी/नयी कविता के दौरान जिस सुगठित स्वाधीन आत्म का दीप या द्वीप के रूप में महिमामंडन किया गया था, उसका इस भूमंडलीकृत उत्तर आधुनिक दौर में इस प्रकार टूट कर बिखर जाना विस्मय का विषय नहीं होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि गोर्की, लूकाच और हिन्दी में मुक्तिबोध ने इस सुगठित आत्म की असलियत बहुत पहले पहचान ली थी। सच तो यह है कि वैसा सुगठित आत्म तो तब भी नहीं था, जब ऐसा दावा किया जाता था।

इस आर्थिक, राजनीतिक सत्तातंत्र में शामिल व्यक्ति के लिए सुसमन्वित आत्म की सम्भावना लगभग असम्भव है। यदि एसार का आत्म वैसा विशृंखलित नहीं है तो उसका कारण यह है कि वह इस तंत्र की धारा के विरुद्ध चलने का यत्न करता है। वह सच्चाई का पता लगाना चाहता है। जबकि सच्चाई तक पहुंचने का यत्न करना ही उसका सबसे बड़ा गुनाह है। सत्ता के लिए सच्चाई सिर्फ एक खेल है जिसे वह जनता को झांसा देने और सत्ता हथियाने के लिए खेलती है।

यह चरित्रप्रधान यथार्थवादी शैली में लिखा गया उपन्यास नहीं है। ज्यादा स्पष्ट शब्दों में कहूं तो उपन्यास की रचना प्रक्रिया को भी उद्घाटित करने वाला उपन्यास है। उपन्यास शब्दों से लिखा जाता है और इस उपन्यास के नायक के पेशे की पहली शर्त यह है कि शब्द पर संदेह करो, शब्द तुम्हारा दुश्मन है। शब्द ढाल या तलवार की तरह झूठ का संरक्षक है। इसलिए आदतन वह 'कहे और लिखे को संदेह से देखता है।'

यह सच है कि भाषा कोई पारदर्शी माध्यम नहीं है जिसके आरपार देखा जा सके। भाषा यथार्थ का 'दर्शन' कराने वाली खिड़की भी नहीं। यथार्थ भी पहले से मौजूद कोई वस्तु नहीं जिसे सिर्फ आख्यान के अंदर डालभर देने की जरूरत हो। असल में हम जिसे यथार्थ कहते हैं वह अक्सर भाषायी गल्प का परिणाम होता है। भाषा में एक अपनी दुनिया रच लेने की सामर्थ्य है। कोई जरूरी नहीं कि भाषा में रची गयी दुनिया यथार्थ ही हो। वह काल्पनिक, मायावी, तिलिस्मी और फैन्टास्टिक भी हो

सकती है। जिसे हम यथार्थ कहते हैं वह भी भाषायी विमर्शों से रचा गया होता है। इसलिए यह बात अपनी जगह बिल्कुल दुरुस्त है कि 'यथार्थ कुछ नहीं कहता। कला सब कुछ कह देती है। पर उसका कहा, दर्शक या श्रोता के जेहन में है, उसके बाहर नहीं।' यहां मैं सिर्फ इतना संशोधन करना चाहूंगा कि सब कुछ कहने का काम कला हमेशा नहीं करती, कभी कभी छुपाने या रूप बदल देने का भी काम करती है।

जैसाकि पहले कहा गया, भाषा में एक अपनी दुनिया रच लेने की सामर्थ्य है। इसी सामर्थ्य के सहारे कथाकार आख्यान रचता है। आख्यान रचने की योग्यता प्रायः इस बात से तय होती है कि उसकी अपने माध्यम अर्थात् भाषा पर कितनी पकड़ है। माध्यम दक्षता कथाकार बनने की बुनियादी जरूरत है। समर्थ कथा भाषा के बिना कोई कथाकार नहीं बन सकता। कथा भाषा के बाद बारी आती है कथानक रचने की। कथानक रचने के दौरान वह चीज सामने आती है जिसे हम आज की भाषा में यथार्थ कहते हैं। कहने का आशय यह कि कथानक के संगठन से वह चीज बनती है जिसकी पहचान चालू हिन्दी आलोचना यथार्थ चित्रण या यथार्थ से विचलन के रूप में करती है। अब सवाल यह है कि कथानक कैसे रचा जाता है। उपन्यास लिखने, इतिहास लिखने और घोटाले की रिर्पोट तैयार करने की प्रविधि में क्या कोई बुनियादी अंतर है? उपन्यासकार की माने तो कोई बुनियादी अंतर नहीं। उसने घोटाले का आख्यान ऐसे लिखा *'मानो उसने सब देखा है, उसे हर भेद मालूम है। इस तकनीक को अपना कर उसने अनजोड़ों को जोड़ा, अज्ञात पर रोशनी डाली, रिक्त स्थानों को भरा और जहां जरूरत थी कथानक के किरदारों को वाजिब मकसद दिये। तर्क या लॉजिक के अलावा सुसंगति या सामंजस्य कसौटी थी जिस पर हर घटना, निष्कर्ष या अनुमान का खरा उतरना जरूरी था। जरूरत और तफ्तीश के नये आयामों के मद्देनजर वह ड्राफ्ट में बदलाव करताः कहीं एक पैरा जोड़ना, कहीं और से हटाना इस अभ्यास को अपने उद्यम के लिए उसने केन्द्रीय माना।'*

स्पष्ट है कि चाहे घोटाले की रिपोर्ट हो या उपन्यास/इतिहास का यथार्थ हो, ये सभी गढ़े (कंस्ट्रक्ट) जाते हैं, ये पहले से मौजूद नहीं होते। समस्या यह है कि इन्हें कई रूपों में गढ़ा जा सकता है– जाकी रही भावना जैसी। इन विभिन्न रूपों में से सच निकालने की कोशिश में जो चीज अंततः निकल कर आती है वह भी एक आख्यान ही है। तो फिर क्या सच यह है कि सच या यथार्थ पूर्णतः आख्यान निरपेक्ष हो ही नहीं सकता?

उत्तर आधुनिक समय एक ऐसा समय है जिसमें यथार्थ जगत् और आभासी दुनिया के बीच भेद मिट सा गया है। यहां यथार्थ के नाना आख्यान विचरते हैं, यहां यथार्थ से आख्यान का नहीं, आख्यान से यथार्थ का जन्म होता है। धारावाहिक घोटाले का सच सामने लाने की युक्ति का प्रयोग वस्तुतः इसी उत्तर आधुनिक परिदृश्य का रेखांकन करने के लिए किया गया है। यह परिदृश्य सिर्फ धारावाहिक घोटाले से जुड़े लोगों तक सीमित नहीं है। धारावाहिक घोटाला और उसकी तफ्तीश तो एक रूपक है जिसके सहारे उपन्यासकार उस वर्ग की कथा कहता है जो 'इंडिया' में रहता है। इस इंडिया की 'खाल खरोंचो तो हाथ में चार खोटे सिक्के पड़ते हैं, बदनीयती, फिर फरेब, तीसरा अमरत्व की चाहत और आखिर सेक्स की अनंत भूख।' इस इंडिया को अब भारत की परवाह नहीं। यह शाइनिंग राइजिंग इंडिया है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में अर्थनीति ने राजनीति को अपदस्थ कर दिया है। अब आर्थिक नीतियों का निर्धारण लोकतांत्रिक राजनीति से नहीं होता। यही कारण है कि वैचारिक भिन्नता के बावजूद प्रायः सभी राजनीतिक दल एक सी आर्थिक नीति अपनाते हैं। भूमंडलीकृत पूंजी के भारतीय सूत्रधार के रूप में रंगराजन का काम इन नीतियों के पक्ष में माहौल तैयार करना और लोकतांत्रिक सरकारों पर इन्हीं नीतियों के अनुरूप चलने के लिए दबाव बनाना है। वह एक गैर संवैधानिक सत्ताकेन्द्र है। वह अनेक प्रकार के अपराधों में लिप्त है किन्तु इतना शक्तिशाली है कि अपराध की परिभाषा ही बदलवा

tadbhav.com home page

देता है। वह जो भी करता है, देश की आर्थिक प्रगति के लिए करता है! उसे पारम्परिक अपराधी की तरह कहीं छिपने की जरूरत नहीं। वह समादृत है। उसे पद्मविभूषण अलंकरण मिल चुका है और भारतरत्न मिलने की सम्भावना है। इसीलिए उसका नाम पी.वी.बी.आर. है। वह अगवा ग्रुप का सरगना है किन्तु सच्चाई यह है कि अगवा ग्रुप और 'सरकार' में अब कोई बुनियादी फर्क नहीं रहा।

वैश्विक पूंजी ने अपने हित साधने हेतु ऐसे राज्य का निर्माण किया है जिसके भाग्यविधाता निजीकरण के समर्थक बुद्धिजीवी, राजनेता, नौकरशाह, उद्योगपति और अपराधी हैं। रंगराजन इसी गिरोह का अगुआ है। मौजूदा राष्ट्र राज्य के चरित्र को उद्घाटित करने वाला रंगराजन जैसा चरित्र सम्भवतः हिन्दी उपन्यास में पहली बार आया है। वह हमारे युग का नायक (या खलनायक?) है।

विसर्जन एक ऐसा उपन्यास है जो इस दौर के बुनियादी अंतर्विरोध को केन्द्र में रखते हुए लिखा गया है। बुनियादी अंतर्विरोध को ठीक से समझ लेने के कारण गैर बुनियादी अंतर्विरोधों को बुनियादी अंतर्विरोध बना देने की गलती यहां नहीं दोहरायी गयी है। एसार के अपनी पत्नी कल्पना से सम्बंध लगभग टूट से गये हैं फिर भी उनके सम्बंधों में वैसी तिक्तता उपन्यासकार ने नहीं दिखायी जैसी स्त्रीवादी उपन्यासों में प्रायः दिखायी पड़ती है। सम्बंध टूट से गये है किन्तु सम्बंध के दोबारा कायम हो जाने की सम्भावना बरकरार है।

आदर्श दरबारी कोई आदर्श चरित्र नहीं है। फिर भी उसके अपनी पत्नी सपना से सम्बंध बहुत अच्छे हैं। उपन्यासकार ने उनके सम्बंधों की बहुत ही मोहक तस्वीर पूरी कलात्मक दक्षता से बनायी है।

आदर्श दरबारी की बहन काजल एक विलक्षण चरित्र है। वह खौफ की हद तक खूबसूरत है। उसके इस असाधारण सौन्दर्य के सामने कोई सहज नहीं रह पाता। उससे कोई भारतीय शादी करने के लिए तैयार नहीं होता। कोई न कोई बहाना बना कर लड़के वाले इनकार कर देते हैं क्योंकि वह बला की खूबसूरत है। यह एक ऐसा विलक्षण चरित्र है जिसके निहितार्थों को व्याख्यायित कर पाना आसान नहीं। लगता है कि काजल परवर्ती रोमैंटिक्स (Later Romantics) की दुनिया से उठाया गया चरित्र है।

यद्यपि इस उपन्यास में एसार, कल्पना, आदर्श दरबारी, आदर्श मिराज, सपना, पी.वी.बी.आर रंगराजन जैसे कई उल्लेखनीय चरित्र हैं किन्तु उन्हें महान यथार्थवादी उपन्यासों के चरित्रों के वजन पर तौलना सही नहीं होगा। बाजार केन्द्रित भूमंडलीकरण के इस दौर में चरित्रों की अहमियत अर्थ सत्तातंत्र के सामने कुछ फीकी सी पड़ गयी है। आलम यह है कि *'यह तंत्र कौन नचाता यह नचाने वाला नहीं जानता और इसके कुचक्र में कौन नाचता है यह नाचने वाले के संज्ञान में नहीं। कि घटनाएं तो घट जाती हैं, उनके अन्वेशक का जो पहला अंधा तीर चलता है वही सच बन जाता है। कि घटनाओं के तथ्य इन्सान के भ्रम और सवालों का पूर्ण जवाब कभी नहीं हो सकते... ।'*

सिर्फ घटनाओं या तथ्यों से कहानी नहीं बनती। घटनाएं/तथ्य भी बनाये बिगाड़े जा सकते हैं और उन्हें मनमाना अर्थ दिया जा सकता है, जैसाकि धारावाहिक घोटाले पर तैयार की गयी एसार की रिपोर्ट के साथ हुआ। यहां तक कि धारावाहिक घोटाले की रिपोर्ट भी एसार ने सिर्फ तथ्यों/सूचनाओं के आधार पर नहीं तैयार की थी। उसमें अनेक असंगतियां, अंतर्विरोध और अंतराल थे जिन्हें एसार ने अपनी कल्पना और अनुमान के सहारे दुरुस्त किया था। इसीलिए उपन्यासकार को लगता है कि सबसे यादगार, असरदार और सच्चाई के करीब वे कहानियां होती हैं जो मनगढ़ंत होती हैं। यथार्थवाद से पहले की भारतीय आख्यान परम्परा में मनगढ़ंत कथाओं का ही बोलबाला था। किन्तु हम यथार्थवाद से इस कदर आक्रांत हो गये थे कि इन कथाओं का मर्म ही नहीं समझ पाये। 'विसर्जन' उपन्यास यथार्थवाद से पहले की भारतीय आख्यान परम्परा से रचनात्मक संवाद कायम करने की पृष्ठभूमि तैयार करता है। जाहिर है कि यथार्थवाद की सीमाएं समझ में आ जाने पर ही इस प्रकार की सूझ उत्पन्न हो सकती

थी। वस्तुतः जासूसी उपन्यासों की टेक्नीक का इस्तेमाल लेखक ने सत्ता के तिलिस्म और यथार्थवाद की सीमाओं तथा रचनाप्रक्रिया को उद्घाटित करने के लिए रूपक के रूप में किया है। एसार जैसा चरित्र जो सत्ता के तिलिस्म को तोड़ना चाहता है, पराजित होता है और उसे बचपन में दादी द्वारा सुनायी गयी कथा से संतोष करना पड़ता है। यह कथा एक शक्तिशाली राक्षस की है जिसके सामने देवता भी असहाय नजर आते थे। वह कोई भी रूप धारण कर सकता था। उसकी पहचान असम्भव थी और उसका भय सर्वव्यापी। फिर एक ऋषि प्रकट हुए और उन्होंने समझाया कि इसे ढूंढना, इसका पीछा करना व्यर्थ है। इस दैत्य का आसन कहीं बाहर नहीं, प्रत्येक इन्सान के अंतर्मन में है। इसलिए दृष्टि को अपने भीतर केन्द्रित करो, इस दैत्य का नाश हर इन्सान को स्वयं करना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बहुरूपिया राक्षस समकालीन यथार्थ का ही रूपक है। यह आदर्शवादी समाधान नहीं है। एक समय जरूर यह मान लिया गया था कि व्यवस्था बदलने के साथ मनुष्य का अंतर्मन भी बदल जायेगा। व्यवस्था बदली किन्तु अंतर्मन नहीं बदला, उल्टे उसने व्यवस्था को ही बदल दिया। सम्भवतः अब यह समझ में आया है कि अंतर्मन बदले बिना व्यवस्था बदलने से भी ज्यादा फर्क नहीं पड़ने वाला।

'विसर्जन' उपन्यास में ऐसे संकेत मौजूद हैं जिनके सहारे यथार्थवादोत्तर आख्यान कला और यथार्थ की अवधारणा पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा सकता है।

इस उपन्यास में उठाये मुद्दों के साक्ष्य पर यह कहा जा सकता है कि–

- यथार्थ अधूरा, अस्पष्ट, संदिग्ध और अनेकार्थक होता है।
- हर यथार्थ का प्रति यथार्थ होता है, कुछ रहस्य ही बने रहते हैं और थोड़े बहुत हेर फेर से नतीजे पूरी तरह बदल जाते हैं।
- सबसे यादगार, असरदार और सच्चाई के करीब वे कथाएं होती हैं जो मनगढ़ंत होती हैं।
- मनगढ़ंत कथाएं किसी गहरे बोध या सच्चाई की ओर संकेत कराती हैं।
- खास चीज बोध या सच्चाई है। जिसे हम यथार्थ कथा कहते हैं वह इस सच्चाई तक नहीं पहुंच पा रही। सिर्फ तथ्यों के सहारे इस सच्चाई तक नहीं पहुंचा जा सकता।
- तथ्य से कोई बात सिद्ध नहीं होती। तथ्य गढ़े जा सकते हैं और उपलब्ध तथ्यों की व्याख्या से अर्थ बदल जाता है। तथ्य से भी अधिक महत्वपूर्ण है व्याख्या।

जाहिर है कि इन मुद्दों पर विस्तार से चर्चा करने का यह अवसर नहीं। किन्तु चलते चलते यह जरूर कहना चाहूंगा कि अस्मितावादी विमर्श के प्रभाव में लिखे जा रहे कथा साहित्य में समकालीन सत्ता का चरित्र छिप सा गया था। जबकि सच्चाई यह है कि समूची अस्मितावादी राजनीति इसी सत्ता के साये में, उसे प्रश्नांकित किये बगैर, चल रही है। राजू शर्मा का यह उपन्यास समकालीन सत्ता के इस अमानवीय और तिलिस्मी चेहरे को दोबारा बहस के केन्द्र में ले आता है। सम्भवतः हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में यह एक नया प्रस्थान है। वस्तुतः इस उपन्यास की आख्यान कला और इसमें उठाये गये मुद्दों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किये जाने की जरूरत है।

उपन्यासः विसर्जन, राजू शर्मा, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्यः 450